Chapter छप्पन

स्यमन्तक मणि

इस अध्याय में यह बतलाया गया है कि अपने विरुद्ध झूठे दोषारोपण के निराकरण के लिए भगवान् कृष्ण ने किस तरह स्यमन्तक मणि को फिर से प्राप्त किया और जाम्बवान तथा सत्राजित की कन्याओं से विवाह किया। भगवान् ने स्यमन्तक मणि विषयक लीला करके भौतिक सम्पत्ति की व्यर्थता सिद्ध कर दी।

जब शुकदेव गोस्वामी ने बतलाया कि राजा सत्राजित ने स्यमन्तक मणि के कारण कृष्ण का अपमान किया, तो राजा परीक्षित इस घटना को विस्तार से सुनने के लिए उत्सुक हो उठे। अत: शुकदेव गोस्वामी ने यह कथा कह सुनाई।

राजा सत्राजित ने अपने परम शुभचिन्तक सूर्यदेव की कृपा से स्यमन्तक मणि प्राप्त की। उसने इस मणि को एक जंजीर में बाँध कर गले में लटका लिया और तब द्वारका की यात्रा की। वहाँ के निवासी उसे साक्षात् सूर्यदेव समझ कर कृष्ण के पास गये और बतलाया कि उनका दर्शन करने सूर्यदेव आये हैं। लेकिन कृष्ण ने उत्तर दिया कि आने वाला व्यक्ति सूर्य नहीं अपितु राजा सत्राजित है, जो स्यमन्तक मणि धारण करने से अत्यधिक तेजोमय प्रतीत हो रहा है।

द्वारका में सत्राजित ने इस बहुमूल्य मणि को अपने घर में विशेष वेदिका में स्थापित करा दिया। यह मणि प्रतिदिन प्रचुर मात्रा में स्वर्ण उत्पन्न करता था और इसमें एक अतिरिक्त शक्ति यह थी कि इसकी जहाँ कहीं उचित रीति से पूजा की जाय वहाँ कोई विपत्ति नहीं आयेगी।

एक अवसर पर भगवान् श्रीकृष्ण ने सत्राजित से अनुरोध किया कि वह इस मणि को यदुराज उग्रसेन को दे दे। किन्तु सत्राजित ने देने से इनकार कर दिया क्योंकि वह लालची था। इसके कुछ काल बाद सत्राजित का भाई प्रसेन घोड़े पर सवार होकर और अपने गले में स्यमन्तक मणि पहनकर शिकार खेलने गया। मार्ग में एक सिंह ने उसे मार डाला और उस मणि को एक पहाड़ी गुफा में ले

गया जहाँ ऋक्षराज जाम्बवान रह रहे थे। जाम्बवान ने उस सिंह को मार डाला और उस मणि को अपने बेटे को खेलने के लिए दे दिया।

जब राजा सत्राजित का भाई नहीं लौटा तो राजा ने यह मान लिया कि कृष्ण ने स्यमन्तक मणि के लिए उसे मार डाला है। जब कृष्ण ने जनता में फैली इस अफवाह को सुना तो अपने नाम से कलंक छुड़ाने के लिए वे कुछ नागरिकों के साथ प्रसेन को खोजने निकले। उसके पैरों के निशानों का पीछा करते करते उन्होंने उसके शरीर तथा उसके घोड़े को मार्ग पर पड़ा देखा। उसके आगे उन्होंने जाम्बवान द्वारा मारे गये सिंह के शरीर को देखा। भगवान् कृष्ण ने नागरिकों से गुफा के बाहर रहने के लिए कहा और स्वयं पता लगाने गुफा के भीतर गये।

भगवान् जब जाम्बवान की गुफा में घुसे तो देखा कि वह स्यमन्तक मणि एक बालक के पास पड़ा था। किन्तु जब कृष्ण ने वह मणि लेना चाहा तो बालक की धाय भयभीत होकर चिल्ला पड़ी जिससे तुरन्त ही वहाँ जाम्बवान आ गये। उन्होंने कृष्ण को सामान्य व्यक्ति समझ कर उनसे लड़ना शुरू कर दिया। दोनों लगातार २८ दिनों तक लड़ते रहे। तब तक जाम्बवान भगवान् के प्रहार से निर्बल हो गया। तब यह समझ कर कि कृष्ण भगवान् हैं, जाम्बवान ने उनकी प्रशंसा करनी शुरू कर दी। भगवान् ने अपने करकमलों से जाम्बवान का स्पर्श करते हुए उसके भय को दूर किया और मणि के बारे में सारी बातें बतलाईं। जाम्बवान ने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक वह मणि भगवान् को भेंट कर दिया और साथ में अपनी कुमारी कन्या जाम्बवती भी भेंट कर दी।

इस बीच कृष्ण के संगी गुफा के बाहर बारह दिनों तक उनके बाहर आने की प्रतीक्षा करने के बाद निराश होकर द्वारका लौट गये। कृष्ण के सारे मित्र तथा परिवार वाले अत्यन्त दुखी थे और कृष्ण के सकुशल वापस आने के लिए दुर्गा देवी की नियमित रूप से पूजा करने लगे। जब वे यह पूजा कर रहे थे तभी कृष्ण नवविवाहिता पत्नी के साथ नगर में प्रविष्ट हुए। उन्होंने सत्राजित को राजसभा में बुलवाया और स्यमन्तक मणि पाने की सारी कहानी सुनाकर उसे वह मणि वापस कर दिया। सत्राजित ने अतीव लज्जा तथा पश्चाताप के साथ वह मणि स्वीकार किया। वह अपने घर चला गया और उसने निश्चय किया कि भगवान् के चरणकमलों पर किये गये अपराध के प्रायश्चित्त स्वरूप वह न केवल वह मणि उन्हें दे देगा अपितु अपनी कन्या भी दान में देगा। श्रीकृष्ण ने सत्राजित की कन्या सत्यभामा के

साथ पाणिग्रहण तो स्वीकार कर लिया, क्योंकि वह सर्वगुण सम्पन्न थी किन्तु उन्होंने मणि लेना अस्वीकार कर दिया और उसे राजा सत्राजित को लौटा दिया।

श्रीशुक उवाच
सत्राजितः स्वतनयां कृष्णाय कृतकिल्बिषः ।
स्यमन्तकेन मणिना स्वयमुद्यम्य दत्तवान् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; सत्राजितः—राजा सत्राजित ने; स्व—अपनी; तनयाम्—पुत्री; कृष्णाय—कृष्ण को; कृत—कर चुकने पर; किल्बिषः—अपराध; स्यमन्तकेन—स्यमन्तक नामक; मणिना—मणि सहित; स्वयम्—स्वयं; उद्यम्य—प्रयास करके; दत्तवान्—दे दिया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : कृष्ण का अपमान करने के बाद सत्राजित ने अपनी पुत्री तथा स्यमन्तक मणि उन्हें भेंट करके प्रायश्चित करने का भरसक प्रयत्न किया।

श्रीराजोवाच
सत्राजितः किमकरोद्ब्रह्मन्कृष्णस्य किल्बिषः ।
स्यमन्तकः कुतस्तस्य कस्माद्दत्ता सुता हरेः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा—राजा (परीक्षित महाराज) ने; उवाच—कहा; सत्राजितः—सत्राजित ने; किम्—क्या; अकरोत्—किया; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; कृष्णस्य—कृष्ण के विरुद्ध; किल्बिषः—अपराध; स्यमन्तकः—स्यमन्तक मणि; कुतः—कहाँ से; तस्य—उसका; कस्मात्—क्यों; दत्ता—दिया; सुता—अपनी पुत्री; हरेः—भगवान् हरि को।

महाराज परीक्षित ने पूछा : ''हे ब्राह्मण, राजा सत्राजित ने भगवान् कृष्ण को रुष्ट करने के लिए क्या कर दिया? उसे स्यमन्तक मणि कहाँ से मिला? और उसने अपनी पुत्री भगवान् को क्यों दी?''

श्रीशुक उवाच
आसीत्सत्राजितः सूर्यो भक्तस्य परमः सखा ।
प्रीतस्तस्मै मणिं प्रादात्स च तुष्टः स्यमन्तकम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; आसीत्—था; सत्राजितः—सत्राजित का; सूर्यः—सूर्यदेव; भक्तस्य—भक्त का; परमः—परम; सखा—शुभचिन्तक मित्र; प्रीतः—प्रिय; तस्मै—उसको; मणिम्—मणि; प्रादात्—दिया; सः—उसने; च—तथा; तुष्टः—प्रसन्न होकर; स्यमन्तकम्—स्यमन्तक नामक।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : सूर्यदेव अपने भक्त सत्राजित के प्रति अत्यन्त वत्सल थे। अतः उनके श्रेष्ठ मित्र के रूप में उन्होंने अपनी तुष्टि के चिन्ह रूप में उसे स्यमन्तक नामक मणि प्रदान

किया।

स तं बिभ्रन्मणिं कण्ठे भ्राजमानो यथा रविः ।
प्रविष्टो द्वारकां राजन्तेजसा नोपलक्षितः ॥ ४॥

शब्दार्थ

सः—वह, राजा सत्राजित; तम्—उस; बिभ्रत्—पहने हुए; मणिम्—मणि को; कण्ठे—अपने गले में; भ्राजमानः—खूब चमकीला; यथा—सदृश; रविः—सूर्य; प्रविष्टः—प्रविष्ट हुआ; द्वारकाम्—द्वारकापुरी में; राजन्—हे राजा (परीक्षित); तेजसा—तेज से; न—नहीं; उपलक्षितः—पहचाना जाता था।

सत्राजित उस मणि को गले में पहन कर द्वारका में प्रविष्ट हुआ। हे राजन्, वह साक्षात् सूर्य के समान चमक रहा था और मणि के तेज से पहचाना नहीं जा रहा था।

तं विलोक्य जना दूरात्तेजसा मुष्टदृष्टयः ।
दीव्यतेऽक्षैर्भगवते शशंसुः सूर्यशङ्किताः ॥ ५॥

शब्दार्थ

तम्—उसे; विलोक्य—देख कर; जनाः—लोग; दूरात्—दूर से ही; तेजसा—उसके तेज से; मुष्ट—चुरायी हुई; दृष्टयः—देखने की शक्ति; दीव्यते—खेलते हुए; अक्षैः—पाँसा से; भगवते—भगवान् कृष्ण से; शशंसुः—उन्होंने सूचना दी; सूर्य—सूर्यदेव; शङ्किताः—उसे मान कर।

जब लोगों ने सत्राजित को दूर से आते देखा तो उसकी चमक से वे चौंधिया गये। उन्होंने मान लिया कि वह सूर्यदेव है और भगवान् कृष्ण से बताने गये जो उस समय पाँसा खेल रहे थे।

नारायण नमस्तेऽस्तु शङ्खचक्रगदाधर ।
दामोदरारविन्दाक्ष गोविन्द यदुनन्दन ॥ ६॥

शब्दार्थ

नारायण—हे नारायण; नमः—नमस्कार; ते—आपको; अस्तु—हो; शङ्ख—शंख; चक्र—चक्र; गदा—तथा गदा के; धर—धारण करने वाले; दामोदर—हे दामोदर; अरविन्द-अक्ष—हे कमल-नेत्र; गोविन्द—हे गोविन्द; यदु-नन्दन—हे यदुओं के लाड़ले बेटे।

[द्वारकावासियों ने कहा] : हे नारायण, हे शंख, चक्र, गदा धारण करने वाले, हे कमल-नेत्र दामोदर, हे गोविन्द, हे यदुवंशी, आपको नमस्कार है।

एष आयाति सविता त्वां दिदृक्षुर्जगत्पते ।
मुष्णन्गभस्तिचक्रेण नृणां चक्षूंषि तिग्मगुः ॥ ७॥

शब्दार्थ

एषः—यह; आयाति—आ रहा है; सविता—सूर्यदेव; त्वाम्—तुमको; दिदृक्षुः—देखने की इच्छा से; जगत्-पते—हे ब्रह्माण्ड के स्वामी; मुष्णन्—चुरा कर; गभस्ति—अपनी किरणों के; चक्रेण—गोले से; नृणाम्—लोगों की; चक्षूंषि—आँखों को; तिग्म—प्रखर; गुः—विकिरण वाला।

हे ब्रह्माण्ड के स्वामी, सवितादेव आपको मिलने आये हैं। वे अपनी प्रखर तेजोमय किरणों से सबों की आँखों को चौंधिया रहे हैं।

ननन्विच्छन्ति ते मार्गं त्रीलोक्यां विबुधर्षभाः ।
ज्ञात्वाद्य गूढं यदुषु द्रष्टुं त्वां यात्यजः प्रभो ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

ननु—अवश्य ही; अन्विच्छन्ति—ढूँढ़ लेते हैं; ते—तुम्हारा; मार्गम्—रास्ता; त्रि-लोक्याम्—तीनों लोकों में; विबुध—चतुर देवताओं के; ऋषभाः—अत्यन्त पूज्य; ज्ञात्वा—जान कर; अद्य—अब; गूढम्—वेश बदले; यदुषु—यदुओं के बीच; द्रष्टुम्—देखने के लिए; त्वाम्—तुमको; याति—आता है; अजः—अजन्मा (सूर्यदेव); प्रभो—हे प्रभु।

हे प्रभु, अब तीनों लोकों के परम श्रेष्ठ देवता आपको खोज निकालने के लिए उत्सुक हैं क्योंकि आपने अपने को यदुवंशियों के बीच छिपा रखा है। अतः अजन्मा सूर्यदेव आपका दर्शन करने यहाँ आये हैं।

श्रीशुक उवाच
निशम्य बालवचनं प्रहस्याम्बुजलोचनः ।
प्राह नासौ रविर्देवः सत्राजिन्मणिना ज्वलन् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; निशम्य—सुनकर; बाल—बचकाना; वचनम्—वचनों को; प्रहस्य—हँस कर; अम्बुज—कमल सदृश; लोचनः—आँखों वाले; प्राह—कहा; न—नहीं; असौ—यह व्यक्ति; रविः देवः—सूर्यदेव; सत्राजित्—राजा सत्राजित; मणिना—अपनी मणि के कारण; ज्वलन्—चमकता हुआ।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे बताया : ये भोलेभाले वचन सुनकर कमलनयन भगवान् जोर से हँसे और बोले, ''यह सूर्यदेव, रवि नहीं, अपितु सत्राजित है, जो अपनी मणि के कारण चमक रहा है।''

सत्राजित्स्वगृहं श्रीमत्कृतकौतुकमङ्गलम् ।
प्रविश्य देवसदने मणिं विप्रैर्न्यवेशयत् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

सत्राजित्—सत्राजित; स्व—अपने; गृहम्—घर; श्रीमत्—ऐश्वर्यवान; कृत—किया; कौतुक—उत्सव के साथ; मङ्गलम्—शुभ अनुष्ठान; प्रविश्य—प्रवेश करके; देव-सदने—मन्दिर-कक्ष में; मणिम्—मणि को; विप्रैः—विद्वान ब्राह्मणों द्वारा; न्यवेशयत्—उसने स्थापित करा दिया।

राजा सत्राजित समारोह के साथ शुभ अनुष्ठान सम्पन्न करके अपने एश्वर्यशाली घर में प्रविष्ट

हुआ। उसने योग्य ब्राह्मणों से अपने घर के मन्दिर-कक्ष में स्यमन्तक मणि की स्थापना करा दी।

दिने दिने स्वर्णभारानष्टौ स सृजति प्रभो ।
दुर्भिक्षमार्यरिष्टानि सर्पाधिव्याधयोऽशुभाः ।
न सन्ति मायिनस्तत्र यत्रास्तेऽभ्यर्चितो मणिः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

दिने दिने—प्रति दिन; स्वर्ण—स्वर्ण के; भारान्—भार (एक तौल); अष्टौ—आठ; सः—वह; सृजति—उत्पन्न करता है; प्रभो—हे प्रभु (परीक्षित महाराज); दुर्भिक्ष—अकाल; मारि—असामयिक मृत्युएँ; अरिष्टानि—आपदाएँ; सर्प—साँप; आधि—मानसिक रोग; व्याधयः—रोग; अशुभाः—अशुभ; न सन्ति—नहीं होते हैं; मायिनः—ठग; तत्र—वहाँ; यत्र—जहाँ; आस्ते—रहती है; अभ्यर्चितः—ठीक से पूजित; मणिः—मणि।

हे प्रभु, वह मणि प्रति दिन आठ भार सोना उत्पन्न करता था और जिस स्थान में वह रखा रहता था और पूजा जाता था वह स्थान आपदाओं से तथा अकाल, असामयिक मृत्यु तथा सर्पदंश, मानसिक तथा भौतिक रोगों और ठगों से मुक्त रहता था।

तात्पर्य : *भार* के सम्बन्ध में श्रील श्रीधर स्वामी ने निम्नलिखित शास्त्रीय सन्दर्भ दिया है—

चतुर्भिर्व्रीहिभिर्गुञ्जां गुञ्जाः पञ्च पणं पणान्।

अष्टौ धरणमष्टौ च कर्षं तांश्चतुरः पलम्।

तुलां पलशतं प्राहुर्भारः स्याद्विंशतिस्तुलाः॥

''चार चावल के दाने एक गुंजा कहलाते हैं; पाँच गुंजा बराबर एक पण; आठ पण बराबर एक कर्ष; चार कर्ष बराबर एक पल तथा एक सौ पल बराबर एक तुला; बीस तुला बराबर एक भार होता है।'' चूँकि एक औंस में चावल के लगभग ३७०० दाने होते हैं इसलिए स्यमन्तक मणि प्रतिदिन लगभग १७० पौंड सोना उत्पन्न कर रहा था।

स याचितो मणिं क्वापि यदुराजाय शौरिणा ।
नैवार्थकामुकः प्रादाद्याच्ञाभङ्गमतर्कयन् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

सः—उसने, सत्राजित ने; याचितः—माँगे जाने पर; मणिम्—मणि को; क्व अपि—एक अवसर पर; यदु-राजाय—यदुराज उग्रसेन के लिए; शौरिणा—कृष्ण द्वारा; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; अर्थ—सम्पत्ति का; कामुकः—लालची; प्रादात्—दिया; याच्ञा—अनुरोध का; भङ्गम्—इनकार; अतर्कयन्—विचार न करता हुआ।

एक अवसर पर भगवान् कृष्ण ने सत्राजित से अनुरोध किया कि वह इसे यदुराज उग्रसेन को दे दे किन्तु सत्राजित इतना लालची था कि उसने देने से इनकार कर दिया। उसने भगवान्

की याचना को ठुकराने से होने वाले अपराध की गम्भीरता पर विचार नहीं किया।

तमेकदा मणिं कण्ठे प्रतिमुच्य महाप्रभम् ।
प्रसेनो हयमारुह्य मृगायां व्यचरद्वने ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस; एकदा—एक बार; मणिम्—मणि को; कण्ठे—गले में; प्रतिमुच्य—पहन कर; महा—अत्यन्त; प्रभम्—तेजवान; प्रसेनः—प्रसेन (सत्राजित का भाई); हयम्—घोड़े पर; आरुह्य—सवार होकर; मृगायाम्—शिकार के लिए; व्यचरत्—चला गया; वने—वन में।

एक बार सत्राजित का भाई प्रसेन उस चमकीली मणि को गले में पहन कर घोड़े पर सवार हुआ और जंगल में शिकार खेलने चला गया।

तात्पर्य : सत्राजित द्वारा कृष्ण का अनुरोध अस्वीकार करने का अशुभ परिणाम प्रकट होने ही वाला है।

प्रसेनं सहयं हत्वा मणिमाच्छिद्य केशरी ।
गिरिं विशन्जाम्बवता निहतो मणिमिच्छता ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

प्रसेनम्—प्रसेन को; स—सहित; हयम्—उसके घोड़े; हत्वा—मार कर; मणिम्—मणि को; आच्छिद्य—पकड़कर; केशरी—सिंह; गिरिम्—पर्वत (की गुफा) में; विशन्—प्रवेश करते हुए; जाम्बवता—ऋक्षराज जाम्बवान् द्वारा; निहतः—मारा गया; मणिम्—मणि; इच्छता—चाहने वाला।

प्रसेन तथा उसके घोड़े को एक सिंह ने मार कर वह मणि ले लिया। किन्तु जब वह सिंह पर्वत की गुफा में घुसा तो उस मणि के इच्छुक जाम्बवान ने उसे मार डाला।

सोऽपि चक्रे कुमारस्य मणिं क्रीडनकं बिले ।
अपश्यन्भ्रातरं भ्राता सत्राजित्पर्यतप्यत ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

सः—उसने, जाम्बवान् ने; अपि—भी; चक्रे—बनाया; कुमारस्य—अपने पुत्र के लिए; मणिम्—मणि को; क्रीडनकम्—खिलौना; बिले—गुफा में; अपश्यन्—न देखते हुए; भ्रातरम्—अपने भाई को; भ्राता—भाई; सत्राजित्—सत्राजित; पर्यतप्यत—अत्यन्त दुखी हुआ।

गुफा के भीतर जाम्बवान ने उस मणि को अपने पुत्र को खिलौने के तौर पर खेलने के लिए दे दिया। इस बीच सत्राजित अपने भाई को वापस आता न देख कर अत्यन्त व्याकुल हो गया।

प्रायः कृष्णेन निहतो मणिग्रीवो वनं गतः ।

भ्राता ममेति तच्छ्रुत्वा कर्णे कर्णेऽजपन्जनाः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

प्रायः—सम्भवतया; कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; निहतः—मारा गया; मणि—मणि; ग्रीवः—अपने गले में पहने; वनम्—वन में; गतः—गया हुआ; भ्राता—भाई; मम—मेरा; इति—ऐसा कहकर; तत्—वह; श्रुत्वा—सुनकर; कर्णे कर्णे—एक कान से दूसरे कान में; अजपन्—कानाफूसी करते; जनाः—लोग।

उसने कहा : ''सम्भवतया कृष्ण ने मेरे भाई को मार डाला है क्योंकि वह अपने गले में मणि पहन कर जंगल गया था।'' जब लोगों ने यह दोषारोपण सुना तो वे एक-दूसरे से कानाफूसी करने लगे।

भगवांस्तदुपश्रुत्य दुर्यशो लिप्तमात्मनि ।
मार्ष्टुं प्रसेनपदवीमन्वपद्यत नागरैः ॥ १७॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान्, कृष्ण; तत्—वह; उपश्रुत्य—लोगों से सुनकर; दुर्यशः—अपयश; लिप्तम्—पोता हुआ; आत्मनि—अपने ऊपर; मार्ष्टुम्—साफ करने के लिए; प्रसेन-पदवीम्—प्रसेन द्वारा अपनाये गये मार्ग का; अन्वपद्यत—पीछा किया; नागरैः—नगर के निवासियों के साथ।

जब भगवान् कृष्ण ने यह अफवाह सुनी तो उन्होंने अपने यश में लगे कलंक को मिटाना चाहा। अतः द्वारका के कुछ नागरिकों को अपने साथ लेकर वे प्रसेन के मार्ग को ढूँढ़ने के लिए रवाना हो गये।

हतं प्रसेनं अश्वं च वीक्ष्य केशरिणा वने ।
तं चाद्रिपृष्ठे निहतमृक्षेण ददृशुर्जनाः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

हतम्—मारा गया; प्रसेनम्—प्रसेन को; अश्वम्—उसके घोड़े को; च—तथा; वीक्ष्य—देख कर; केशरिणा—सिंह द्वारा; वने—जंगल में; तम्—उस (सिंह) को; च—भी; अद्रि—पर्वत के; पृष्ठे—बगल में; निहतम्—मारा गया; ऋक्षेण—ऋक्ष (जाम्बवान) द्वारा; ददृशुः—उन्होंने देखा; जनाः—लोगों ने।

जंगल में उन्होंने प्रसेन तथा उसके घोड़े दोनों को ही सिंह द्वारा मारा गया पाया। इसके आगे उन्होंने पर्वत की बगल में सिंह को ऋक्ष (जाम्बवान) द्वारा मारा गया पाया।

ऋक्षराजबिलं भीममन्धेन तमसावृतम् ।
एको विवेश भगवानवस्थाप्य बहिः प्रजाः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

ऋक्ष-राज—रीछों का राजा; बिलम्—गुफा में; भीमम्—भयावह; अन्धेन तमसा—घने अंधकार से; आवृतम्—घिरा; एकः—अकेले; विवेश—घुसे; भगवान्—भगवान्; अवस्थाप्य—रखकर; बहिः—बाहर; प्रजाः—नागरिकों को।

भगवान् ने ऋक्षराज की भयावनी घनान्धकारमय गुफा के बाहर नागरिकों को बैठा दिया और अकेले ही भीतर घुसे।

तत्र दृष्ट्वा मणिप्रेष्ठं बालक्रीडनकं कृतम् ।
हर्तुं कृतमतिस्तस्मिन्नवतस्थेऽर्भकान्तिके ॥ २० ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; दृष्ट्वा—देखकर; मणि-प्रेष्ठम्—अत्यन्त मूल्यवान मणि; बाल—बच्चे का; क्रीडनकम्—खिलौना; कृतम्—बना कर; हर्तुम्—ले लेने के लिए; कृत-मतिः—निश्चय करके; तस्मिन्—वहाँ; अवतस्थे—ठहर गये; अर्भक-अन्तिके—बालक के पास।

वहाँ भगवान् कृष्ण ने देखा कि वह बहुमूल्य मणि बच्चे का खिलौना बना हुआ है। उसे लेने का संकल्प करके वे उस बालक के निकट गये।

तमपूर्वं नरं दृष्ट्वा धात्री चुक्रोश भीतवत् ।
तच्छ्रुत्वाभ्यद्रवत्क्रुद्धो जाम्बवान्बलिनां वरः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस; अपूर्वम्—पहले कभी नहीं (देखा); नरम्—व्यक्ति को; दृष्ट्वा—देखकर; धात्री—धाई; चुक्रोश—चिल्ला उठी; भीत-वत्—डरी हुई; तत्—उसे; श्रुत्वा—सुनकर; अभ्यद्रवत्—दौड़ा; क्रुद्धः—नाराज; जाम्बवान्—जाम्बवान; बलिनाम्—बलवानों में; वरः—श्रेष्ठ।

उस असाधारण व्यक्ति को अपने समक्ष खड़ा देखकर बालक की धाई भयवश चिल्ला उठी। उसकी चीख सुनकर बलवानों में सर्वाधिक बलवान जाम्बवान क्रुद्ध होकर भगवान् की ओर दौड़ा।

स वै भगवता तेन युयुधे स्वामिनात्मनः ।
पुरुषं प्राकृतं मत्वा कुपितो नानुभाववित् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; वै—निस्सन्देह; भगवता—भगवान् के साथ; तेन—उन; युयुधे—लड़ने लगा; स्वामिना—स्वामी से; आत्मनः—अपने ही; पुरुषम्—पुरुष; प्राकृतम्—संसारी; मत्वा—मान कर; कुपितः—क्रुद्ध; न—नहीं; अनुभाव—उनके पद से; वित्—अवगत।

उनके असली पद से अनजान तथा उन्हें सामान्य व्यक्ति समझते हुए जाम्बवान अपने स्वामी भगवान् से क्रुद्ध होकर लड़ने लगे।

तात्पर्य : *पुरुषं प्राकृतं मत्वा*—''उन्हें एक सामान्य व्यक्ति समझते हुए'' ये शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। तथाकथित वैदिक विद्वान, जिनमें अधिकांश पाश्चात्य विद्वान सम्मिलित हैं *पुरुषम्* का ''मनुष्य'' के

रूप में अर्थ देते हुए आनन्दित होते हैं चाहे यह शब्द भगवान् कृष्ण के सन्दर्भ में ही क्यों न हो। इस तरह वैदिक साहित्य के उनके अवैध ईश्वर के प्रति उनकी भौतिकतावादी धारणाओं से रंजित होते हैं। किन्तु यहाँ स्पष्ट कहा गया है कि चूँकि जाम्बवान ने भगवान् के पद को ठीक से नहीं समझा इसीलिए उन्होंने उन्हें *प्राकृत पुरुष* ''एक सांसारिक व्यक्ति'' माना। दूसरे शब्दों में भगवान् तो *पुरुषोत्तम,* ''परम दिव्य पुरुष,'' हैं।

द्वन्द्वयुद्धं सुतुमुलमुभयोर्विजिगीषतोः ।
आयुधाश्मद्रुमैर्दोर्भिः क्रव्यार्थे श्येनयोरिव ॥ २३॥

शब्दार्थ

द्वन्द्व—जोड़ी; युद्धम्—युद्ध; सु-तुमुलम्—अत्यन्त भयानक; उभयोः—दोनों के बीच; विजिगीषतोः—जीतने के लिए प्रयत्नशील; आयुध—हथियारों; अश्म—पत्थरों; द्रुमैः—तथा वृक्षों से; दोर्भिः—अपनी बाहुओं से; क्रव्य—मांस; अर्थे—के हेतु; श्येनयोः—दो बाजों में; इव—मानो।

दोनों जीतने के लिए कृतसंकल्प होकर घमासान द्वन्द्व युद्ध करने लगे। पहले विविध हथियारों से और तब पत्थरों, वृक्षों के तनों और अन्त में निःशस्त्र बाहुओं से एक-दूसरे से भिड़ कर, वे मांस के टुकड़े के लिए झपट रहे दो बाजों की तरह लड़ रहे थे।

आसीत्तदष्टाविंशाहमितरेतरमुष्टिभिः ।
वज्रनिष्पेषपरुषैरविश्राममहर्निशम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

आसीत्—था; तत्—वह; अष्टा-विंश—अट्ठाईस; अहम्—दिन; इतर-इतर—एक-दूसरे से; मुष्टिभिः—मुक्कों से; वज्र—बिजली के; निष्पेष—प्रहारों की तरह; परुषैः—कठोर; अविश्रमम्—बिना रुके; अहः-निशम्—अहर्निश, दिन-रात।

यह युद्ध बिना विश्राम के अट्ठाईस दिनों तक चलता रहा। दोनों एक-दूसरे पर मुक्कों से प्रहार कर रहे थे, जो टूक-टूक करने वाले बिजली के प्रहारों जैसे गिरते थे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि यह युद्ध बिना अन्तराल के रात-दिन चलता रहा।

कृष्णमुष्टिविनिष्पात निष्पिष्टाङ्गोरु बन्धनः ।
क्षीणसत्त्वः स्विन्नगात्रस्तमाहातीव विस्मितः ॥ २५॥

शब्दार्थ

कृष्ण-मुष्टि—कृष्ण के मुक्के के; विनिष्पात—प्रहारों से; निष्पिष्ट—चटनी होकर; अङ्ग—शरीर के; उरु—विशाल; बन्धनः—पुट्ठे, पेशियाँ; क्षीण—निर्बल; सत्त्वः—शक्ति; स्विन्न—पसीना छोड़ता; गात्रः—अंग; तम्—उससे; आह—बोला; अतीव—अत्यन्त; विस्मितः—चकित।

भगवान् कृष्ण के मुक्कों से जाम्बवान की उभरी मांस-पेशियाँ कुचलती गईं, उसका बल घटने लगा और अंग पसीने से तर हो गये, तो वह अत्यन्त चकित होकर भगवान् से बोला।

जाने त्वां सत्त्वभूतानां प्राण ओजः सहो बलम् ।
विष्णुं पुराणपुरुषं प्रभविष्णुमधीश्वरम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

जाने—जानता हूँ; त्वाम्—तुमको (कि हो); सर्व—समस्त; भूतानाम्—जीवों का; प्राणः—प्राण; ओजः—ऐन्द्रिय शक्ति; सहः—मानसिक बल; बलम्—शरीरिक शक्ति; विष्णुम्—भगवान् विष्णु को; पुराण—आदि; पुरुषम्—पुरुष; प्रभविष्णुम्—सर्वशक्तिमान; अधीश्वरम्—परम नियन्ता।

[जाम्बवान ने कहा]: मैं जानता हूँ कि आप समस्त जीवों के प्राण हैं और ऐन्द्रिय, मानसिक तथा शारीरिक बल हैं। आप आदि-पुरुष, परम पुरुष, सर्व शक्तिमान नियन्ता भगवान् विष्णु हैं।

त्वं हि विश्वसृजाम्स्रष्टा सृष्टानामपि यच्च सत् ।
कालः कलयतामीशः पर आत्मा तथात्मनाम् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; हि—निस्सन्देह; विश्व—ब्रह्माण्ड के; सृजाम्—सृजनकर्ताओं के; स्रष्टा—सृजनकर्ता; सृष्टानाम्—उत्पन्न जीवों के; अपि—भी; यत्—जो; च—तथा; सत्—निहित वस्तु; कालः—दमनकारी; कलयताम्—दमनकर्ताओं के; ईशः—परमेश्वर; परः आत्मा—परम आत्मा; तथा—भी; आत्मनाम्—समस्त आत्माओं के।

आप ब्रह्माण्ड के समस्त स्त्रष्टाओं के परम स्त्रष्टा तथा समस्त सृजित वस्तुओं में निहित वस्तु (सत्) हैं। आप समस्त दमनकरियों के दमनकर्ता, परमेश्वर तथा समस्त आत्माओं के परमात्मा हैं।

तात्पर्य : *श्रीमद्भागवत* में ही (३.२५.४२) भगवान् कपिल कहते हैं—*मृत्युश्चरति मद्भयात्*—मेरे भय से साक्षात् मृत्यु इधर-उधर घूमती है।

यस्येषदुत्कलितरोषकटाक्षमोक्षै-
वर्त्मादिशत्क्षुभितनक्रतिमिङ्गलोऽब्धिः ।
सेतुः कृतः स्वयश उज्ज्वलिता च लङ्का
रक्षःशिरांसि भुवि पेतुरिषुक्षतानि ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसके; ईषत्—किंचित; उत्कलित—प्रकट; रोष—क्रोध से; कटा-अक्ष—चितवन से; मोक्षैः—मुक्त होने से; वर्त्म—मार्ग; आदिशत्—दिखलाया; क्षुभित—क्षुब्ध; नक्र—(जिसमें) घड़ियाल; तिमिङ्गलः—बड़ी मछली; अब्धिः—समुद्र; सेतुः—पुल; कृतः—बनाया; स्व—अपने; यशः—यश; उज्वलिता—जला दिया; च—तथा; लङ्का—लंका नगरी; रक्षः—(रावण) असुर के; शिरांसि—सिर; भुवि—पृथ्वी पर; पेतुः—गिरे; इषु—जिसके बाणों से; क्षतानि—कट कर।

आप वही हैं जिनके क्रोध को तनिक प्रकट करने वाली चितवन ने अथाह जल के भीतर के घड़ियालों तथा तिमिंगिल मछलियों को क्षुब्ध बना दिया था, जिससे सागर मार्ग देने के लिए बाध्य हुआ था। आप वही हैं जिन्होंने अपना यश स्थापित करने के लिए एक महान् पुल बनाया, लंका नगरी को जला दिया और जिनके बाणों ने रावण के सिरों को छिन्न कर दिया, जो पृथ्वी पर जा गिरे।

इति विज्ञातविइज्ञानमृक्षराजानमच्युतः ।
व्याजहार महाराज भगवान्देवकीसुतः ॥ २९ ॥
अभिमृश्यारविन्दाक्षः पाणिना शंकरेण तम् ।
कृपया परया भक्तं मेघगम्भीरया गिरा ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; विज्ञात-विज्ञानम्—जिसने सत्य को समझ लिया था; ऋक्ष—रीछों के; राजानम्—राजा से; अच्युतः—कृष्ण; व्याजहार—बोले; महा-राज—हे राजा (परीक्षित); भगवान्—भगवान्; देवकी-सुरः—देवकी-पुत्र; अभिमृश्य—स्पर्श करके; अरविन्द-अक्षः—कमल-नेत्र; पाणिना—अपने हाथ से; शम्—मंगल; करेण—प्रदान करने वाला; तम्—उसको; कृपया—कृपा से; परया—महान्; भक्तम्—भक्त को; मेघ—बादल के समान; गम्भीरया—गम्भीर; गिरा—वाणी में।

[शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा] : हे राजन्, तब भगवान् कृष्ण ने ऋक्षराज को सम्बोधित किया जो सच्चाई जान गया था। देवकी-पुत्र कमल-नेत्र भगवान् ने समस्त, आशीर्वादों के दाता, अपने हाथ से जाम्बवान का स्पर्श किया और अपने भक्त से अत्यन्त कृपापूर्वक मेघ की गर्जना जैसी गम्भीर वाणी में बोले।

मणिहेतोरिह प्राप्ता वयमृक्षपते बिलम् ।
मिथ्याभिशापं प्रमृजन्नात्मनो मणिनामुना ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

मणि—मणि; हेतोः—के कारण; इह—यहाँ; प्राप्ताः—आये हैं; वयम्—हम; ऋक्ष-पते—हे रीछों के स्वामी; बिलम्—गुफा तक; मिथ्या—झूठा; अभिशापम्—दोषारोपण; प्रमृजन्—दूर करने के लिए; आत्मनः—अपने विरुद्ध; मणिना—मणि के साथ; अमुना—इस।

[भगवान् कृष्ण ने कहा] : हे ऋक्षराज, हम इसी मणि के लिए आपकी गुफा में आये हैं। मैं इस मणि का उपयोग अपने विरुद्ध लगाये गये आरोपों को झूठा सिद्ध करने के लिए करना

चाहता हूँ।

इत्युक्तः स्वां दुहितरं कन्यां जाम्बवतीं मुदा ।
अर्हणार्थम्स मणिना कृष्णायोपजहार ह ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उक्तः—कहा गया; स्वाम्—अपनी; दुहितरम्—पुत्री; कन्याम्—कुमारी; जाम्बवतीम्—जाम्बवती को; मुदा—खुशी खुशी; अर्हण-अर्थम्—सादर भेंट के रूप में; सः—उसने; मणिना—मणि समेत; कृष्णाय—कृष्ण को; उपजहार ह—भेंट कर दिया।

इस प्रकार कहे जाने पर जाम्बवान ने प्रसन्नतापूर्वक अपनी कुमारी पुत्री जाम्बवती के साथ साथ मणि को भेंट अर्पित करते हुए भगवान् कृष्ण का सम्मान किया।

अदृष्ट्वा निर्गमं शौरेः प्रविष्टस्य बिलं जनाः ।
प्रतीक्ष्य द्वादशाहानि दुःखिताः स्वपुरं ययुः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

अदृष्ट्वा—न देख कर; निर्गमम्—बाहर आना; शौरेः—कृष्ण का; प्रविष्टस्य—भीतर गये हुए; बिलम्—गुफा में; जनः—लोग; प्रतीक्ष्य—प्रतीक्षा करने के बाद; द्वादश—बारह; अहानि—दिन; दुःखिताः—दुखी; स्व—अपने; पुरम्—नगर को; ययुः—चले गये।

भगवान् शौरि के गुफा में प्रविष्ट होने के बाद उनके साथ आये द्वारका के लोग बारह दिनों तक उनकी प्रतीक्षा करते रहे किन्तु वे बाहर नहीं आये। अन्त में वे सब निराश होकर अत्यन्त दुखी मन से अपने नगर लौट गये थे।

निशम्य देवकी देवी रक्मिण्यानकदुन्दुभिः ।
सुहृदो ज्ञातयोऽशोचन्बिलात्कृष्णमनिर्गतम् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

निशम्य—सुनकर; देवकी—देवकी; देवी रुक्मिणी—देवी रुक्मिणी; आनकदुन्दुभिः—वसुदेव; सुहृदः—मित्रगण; ज्ञातयः—सम्बन्धी लोग; अशोचन्—पछतावा करने लगे; बिलात्—गुफा से; कृष्णम्—कृष्ण को; अनिर्गतम्—बाहर न आते हुए।

जब देवकी, रुक्मिणी देवी, वसुदेव तथा भगवान् के अन्य सम्बन्धियों ने सुना कि वे गुफा से बाहर नहीं निकले तो वे सभी दुःखी होने लगे।

सत्राजितं शपन्तस्ते दुःखिता द्वारकौकसः ।
उपतस्थुश्चन्द्रभागां दुर्गां कृष्णोपलब्धये ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

सत्राजितम्—सत्राजित को; शपन्तः—कोसते हुए; ते—वे; दुःखिताः—दुखित; द्वारका-ओकसः—द्वारकावासियों ने; उपतस्थुः—पूजा की; चन्द्रभागाम्—चन्द्रभागा; दुर्गाम्—दुर्गा की; कृष्ण-उपलब्धये—कृष्ण को प्राप्त करने के लिए।

सत्राजित को कोसते हुए व्याकुल द्वारकावासी चन्द्रभागा नामक दुर्गा अर्चाविग्रह के समीप गये और कृष्ण की वापसी के लिए उनसे प्रार्थना करने लगे।

तेषां तु देव्युपस्थानात्प्रत्यादिष्टाशिषा स च ।
प्रादुर्बभूव सिद्धार्थः सदारो हर्षयन्हरिः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

तेषाम्—उनसे; तु—लेकिन; देवी—देवी की; उपस्थानात्—पूजा के बाद; प्रत्यादिष्ट—बदले में प्रदान किया; आशिषाः—वर; सः—वह; च—तथा; प्रादुर्बभूव—प्रकट हुआ; सिद्ध—प्राप्त करके; अर्थः—अपना लक्ष्य; स-दारः—अपनी पत्नी के सहित; हर्षयन्—हर्षित करते हुए; हरिः—भगवान् कृष्ण।

जब नगरनिवासी देवी की पूजा कर चुके तो वे उनसे बोलीं कि तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार की जाती है। तभी अपने लक्ष्य की पूर्ति करके भगवान् कृष्ण अपनी नई पत्नी के साथ उनके समक्ष प्रकट हुए और उन्हें हर्ष से सराबोर कर दिया।

उपलभ्य हृषीकेशं मृतं पुनरिवागतम् ।
सह पत्न्या मणिग्रीवं सर्वे जातमहोत्सवाः ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

उपलभ्य—पहचान कर; हृषीकेशम्—इन्द्रियों के स्वामी को; मृतम्—मृत व्यक्ति; पुनः—फिर; इव—मानो; आगतम्—आया हुआ; सह—साथ; पत्न्या—पत्नी के; मणि—मणि; ग्रीवम्—गर्दन में; सर्वे—सारे; जात—उत्पन्न किया; महा—अत्यधिक; उत्सवाः—हँसी-खुशी।

भगवान् हृषीकेश को उनकी नवीन पत्नी के साथ तथा उनके गले में स्यमंतक मणि पड़ी देखकर सारे लोगों में अत्यधिक प्रसन्नता छा गई, मानों कृष्ण मृत्यु से वापस लौटे हों।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार जाम्बवान ने जब अपनी पुत्री कृष्ण को भेंट की तो उसने वह मणि उनके गले में डाल दिया था।

सत्राजितं समाहूय सभायां राजसन्निधौ ।
प्राप्तिं चाख्याय भगवान्मणिं तस्मै न्यवेदयत् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

सत्राजितम्—सत्राजित को; समाहूय—बुलवाकर; सभायाम्—राजसभा में; राज—राज (उग्रसेन) की; सन्निधौ—उपस्थिति में; प्राप्तिम्—प्राप्ति; च—तथा; आख्याय—घोषित करके; भगवान्—भगवान् ने; मणिम्—मणि; तस्मै—उसको; न्यवेदयत्—भेंट कर दिया।

भगवान् कृष्ण ने सत्राजित को राजसभा में बुलवाया। वहाँ राजा उग्रसेन की उपस्थिति में

कृष्ण ने मणि पाये जाने की घोषणा की और तब उसे औपचारिक रीति से सत्राजित को भेंट कर दिया।

स चातिव्रीडितो रत्नं गृहीत्वावाङ्मुखस्ततः ।
अनुतप्यमानो भवनमगमत्स्वेन पाप्मना ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, सत्राजित; च—तथा; अति—अत्यधिक; व्रीडितः—लज्जित; रत्नम्—मणि को; गृहीत्वा—ले करके; अवाक्—नीचे की ओर; मुखः—अपना मुँह; ततः—वहाँ से; अनुतप्यमानः—पश्चाताप अनुभव करते हुए; भवनम्—घर; अगमत्—गया; स्वेन—अपने; पाप्मना—पापपूर्ण आचरण के साथ।

अत्यधिक लज्जा से मुँह लटकाये सत्राजित ने वह मणि ले लिया और घर लौट गया किन्तु सारे समय वह अपने पापपूर्ण आचरण पर पश्चाताप का अनुभव करता रहा।

सोऽनुध्यायंस्तदेवाघं बलवद्विग्रहाकुलः ।
कथं मृजाम्यात्मरजः प्रसीदेद्वाच्युतः कथम् ॥ ४० ॥
किम्कृत्वा साधु मह्यं स्यान्न शपेद्वा जनो यथा ।
अदीर्घदर्शनं क्षुद्रं मूढं द्रविणलोलुपम् ॥ ४१ ॥
दास्ये दुहितरं तस्मै स्त्रीरत्नं रत्नमेव च ।
उपायोऽयं समीचीनस्तस्य शान्तिर्न चान्यथा ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; अनुध्यायन्—सोच-विचार करता; तत्—वह; एव—निस्सन्देह; अघम्—अपराध; बल-वत्—बलवानों से; विग्रह—झगड़े के बारे में; आकुलः—चिन्तित; कथम्—कैसे; मृजामि—धो सकूँगा; आत्म—अपने; रजः—कल्मष; प्रसीदेत्—प्रसन्न हों; वा—अथवा; अच्युतः—कृष्ण; कथम्—कैसे; किम्—क्या; कृत्वा—करके; साधु—अच्छा; मह्यम्—मेरे लिए; स्यात्—हो सकता है; न शपेत्—शाप न दें; वा—अथवा; जनः—लोग; यथा—जिस तरह; अदीर्घ—कम अवधि का; दर्शनम्—जिनका दर्शन; क्षुद्रम्—क्षुद्र; मूढम्—मूढ़; द्रविण—सम्पत्ति के; लोलुपम्—लोभी; दास्ये—मैं दूँगा; दुहितरम्—अपनी पुत्री; तस्मै—उनको; स्त्री—स्त्रियों का; रत्नम्—भूषण; रत्नम्—रत्न; एव च—तथा; उपायः—साधन; अयम्—यह; समीचीनः—प्रभावशाली; तस्य—उसका; शान्तिः—शमन; न—नहीं; च—तथा; अन्यथा—नहीं तो।

अपने घोर अपराध के बारे में सोच-विचार करते और भगवान् के शक्तिशाली भक्तों से संघर्ष की सम्भावना के बारे में चिन्तित राजा सत्राजित ने सोचा, ''मैं किस तरह अपने कल्मष को स्वयं धो सकता हूँ और किस तरह भगवान् अच्युत मुझ पर प्रसन्न हों? मैं अपने सौभाग्य की पुनप्राप्ति के लिए क्या कर सकता हूँ? दूरदृष्टि न होने, कंजूस, मूर्ख तथा लालची होने से मैं जनता से शापित होने से कैसे बचूँ? मैं अपनी पुत्री, जो कि सभी स्त्रियों में रत्न है, स्यमन्तक मणि के साथ ही भगवान् को भेंट कर दूँगा। निस्सन्देह उन्हें शान्त करने का यही एकमात्र उचित

उपाय है।''

एवं व्यवसितो बुद्ध्या सत्राजित्स्वसुतां शुभाम् ।
मणिं च स्वयमुद्यम्य कृष्णायोपजहार ह ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; व्यवसितः—दृढ़ संकल्प करके; बुद्ध्या—बुद्धि के उपयोग से; सत्राजित्—सत्राजित; स्व—अपनी; सुताम्—पुत्री; शुभाम्—गौर वर्ण की; मणिम्—मणि; च—तथा; स्वयम्—स्वयं; उद्यम्य—प्रयास करके; कृष्णाय—कृष्ण को; उपजहार ह—भेंट कर दिया।

इस तरह बुद्धिमानी के साथ मन को दृढ़ करके राजा सत्राजित ने स्वयं अपनी गौर-वर्ण वाली पुत्री के साथ साथ स्यमन्तक मणि भी भगवान् कृष्ण को भेंट करने की व्यवस्था की।

तां सत्यभामां भगवानुपयेमे यथाविधि ।
बहुभिर्याचितां शीलरूपौदार्यगुणान्विताम् ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

ताम्—उस; सत्यभामाम्—सत्यभामा से; भगवान्—भगवान् ने; उपयेमे—विवाह कर लिया; यथा-विधि—उचित अनुष्ठान द्वारा; बहुभिः—अनेक लोगों द्वारा; याचिताम्—माँगी गई; शील—उत्तम चरित्र वाली; रूप—सौन्दर्य; औदार्य—तथा उदारता; गुण—गुणों से; अन्विताम्—युक्त, सम्पन्न।

भगवान् ने उचित धार्मिक रीति से सत्यभामा के साथ विवाह कर लिया। उत्तम आचरण, सौन्दर्य, उदारता तथा अन्य सद्गुणों से सम्पन्न होने के कारण अनेक लोगों ने उसे लेना चाहा था।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी बतलाते हैं कि कृतवर्मा जैसे व्यक्तियों ने सत्यभामा से पाणिग्रहण करना चाहा था।

भगवानाह न मणिं प्रतीच्छामो वयं नृप ।
तवास्तां देवभक्तस्य वयं च फलभागिनः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान् ने; आह—कहा; न—नहीं; मणिम्—मणि; प्रतीच्छामः—वापस चाहते हैं; वयम्—हम; नृप—हे राजन्; तव—तुम्हारा; आस्ताम्—रहने दो; देव—देवता (सूर्यदेव) के; भक्तस्य—भक्त का; वयम्—हम; च—भी; फल—इसके फल के; भागिनः—भोक्ता।

भगवान् ने सत्राजित से कहा : हे राजन्, हमें इस मणि को वापस लेने की इच्छा नहीं है। तुम सूर्यदेव के भक्त हो अतः इसे अपने ही पास रखो। इस प्रकार हम भी इससे लाभ उठा सकेंगे।

तात्पर्य : सत्राजित को चाहिए था कि वह भगवान् कृष्ण की पूजा करता। इस तरह कृष्ण के

कथन में थोड़ा व्यंग्य है—''आखिर तुम सूर्यदेव के भक्त जो हो।'' यही नहीं, कृष्ण ने पहले ही सत्राजित का सबसे बड़ा खाजाना—शुद्ध तथा सुन्दर सत्यभामा—पा लिया था।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''स्यमन्तक मणि'' नामक छप्पनवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।